

भारतीय संगीत में स्वर-अलंकार अभ्यास का महत्व**डॉ. देवानंद पाठक¹**DOI: <http://doi.org/10.5281/zenodo.23843407>

Review: 01/01/2026

Acceptance: 04/01/2026

Publication: 25/03/2026

सार: भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर-अभ्यास की परंपरा का विशेष महत्व रहा है। किसी भी विद्यार्थी के लिए राग, बंदिश अथवा स्वतंत्र संगीत-प्रस्तुति सीखने से पहले स्वरों की सही पहचान, उनके क्रम और आपसी संबंध को समझना आवश्यक होता है। स्वर-अलंकार इसी आधार को मजबूत करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसमें स्वरों को विभिन्न क्रमों, समूहों और लयों में गाने अथवा बजाने का अभ्यास किया जाता है। यह अभ्यास केवल स्वरों को याद करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि स्वर की शुद्धता, श्रवण-क्षमता, लयबोध, आवाज अथवा वाद्ययंत्र पर नियंत्रण और संगीतात्मक अभिव्यक्ति को विकसित करने में भी सहायक होता है। भारतीय संगीत की अलग-अलग परंपराओं में स्वर-अभ्यास के विविध रूप मिलते हैं। हिंदुस्तानी संगीत में अलंकार और पलटे तथा कर्नाटक संगीत में सरली वरिसै, जंटई वरिसै और धातु वरिसै इसके परिचित उदाहरण हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में स्वर-अलंकार की अवधारणा, उसके प्रमुख प्रकार, अभ्यास की विधि तथा संगीत-शिक्षा में उसके महत्व का अध्ययन किया गया है। साथ ही, यह समझने का प्रयास किया गया है कि नियमित और सही पद्धति से किया गया अलंकार-अभ्यास किस प्रकार विद्यार्थी को संगीत की आगे की जटिल विधाओं के लिए तैयार करता है।

मुख्य बिंदु: भारतीय शास्त्रीय संगीत, स्वर-अलंकार, रियाज़, स्वर-शुद्धता, सरगम, लय, राग, संगीत-शिक्षा।

1. प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक ऐसी परंपरा है जिसमें ज्ञान, अभ्यास और अनुभव का विशेष स्थान है। इस संगीत को सीखने की प्रक्रिया केवल रागों और बंदिशों को याद कर लेने से पूरी नहीं होती, बल्कि इसके लिए स्वरों की प्रकृति, उनके आपसी संबंध और लय के साथ उनके प्रयोग को समझना भी आवश्यक है। किसी विद्यार्थी की संगीत-यात्रा सामान्यतः स्वर-ज्ञान और सरल अभ्यासों से शुरू होती है। आगे चलकर यही अभ्यास उसे राग-विस्तार, आलाप, तान और बंदिश जैसी विधाओं को समझने में सहायता देते हैं। स्वर-अलंकार इसी प्रारंभिक और महत्वपूर्ण अभ्यास का एक रूप है। इसमें निश्चित क्रम या विशेष नियम के अनुसार स्वरों को गाया अथवा वाद्ययंत्र पर बजाया जाता है।

उदाहरण के लिए, विद्यार्थी केवल सीधे क्रम में Sa Re Ga Ma Pa Dha Ni Sa का अभ्यास नहीं करता, बल्कि स्वरों के अलग-अलग समूह बनाकर भी अभ्यास करता है। कभी चार स्वरों का क्रम आगे बढ़ाया जाता है,

¹वरिष्ठ परियोजना प्रबंधक, मीडिया प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, आईआईटी), कानपुर- 208016

कभी स्वरों को दोहराया जाता है और कभी बीच के स्वरों को छोड़कर अलग संयोजन तैयार किया जाता है। इस प्रकार एक ही स्वर-समूह के माध्यम से कई प्रकार के अभ्यास संभव होते हैं। प्रारंभ में ये स्वर-क्रम सरल प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन इनके नियमित अभ्यास से विद्यार्थी को सुर की स्थिरता, स्वरों के बीच अंतर और संगीत की गति को समझने का अवसर मिलता है। यही कारण है कि हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत, दोनों की शिक्षण-पद्धतियों में स्वर-अभ्यास को विशेष स्थान दिया गया है।

2. स्वर-अलंकार की अवधारणा एवं परंपरागत आधार

सामान्य अर्थ में अलंकार का अर्थ किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने वाले आभूषण या साधन से है। संगीत में भी इस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है। एक ओर अलंकार का संबंध मीड, गमक, मुरकी और खटका जैसी स्वर-सज्जा की विधियों से है, तो दूसरी ओर विद्यार्थियों को सिखाए जाने वाले निश्चित स्वर-क्रमों को भी अलंकार कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य रूप से दूसरे अर्थ अर्थात् स्वर-अभ्यास के लिए तैयार किए गए क्रमबद्ध स्वर-संयोजनों पर विचार किया गया है। परंपरागत संगीतशास्त्र में वर्ण और अलंकार का संबंध महत्वपूर्ण माना गया है। शार्ङ्गदेव के ग्रंथ Sangita Ratnakara के स्वराध्याय में वर्णालंकार के लिए अलग प्रकरण दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वरों के विशेष क्रम और उनके संगीतात्मक संयोजन भारतीय संगीत-चिंतन में लंबे समय से अध्ययन का विषय रहे हैं।

इस ग्रंथ में अलंकार को केवल बाहरी सजावट के रूप में नहीं, बल्कि स्वर-रचना और संगीतात्मक विन्यास से जुड़े विषय के रूप में समझाया गया है (Śāṅgadeva, 1978)। आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत में भी अलंकार शब्द के दोनों अर्थ प्रचलित हैं। Pudaruth (2016) ने अपने अध्ययन में वर्णालंकार और शब्दालंकार के पारंपरिक अंतर पर चर्चा की है। उनके अनुसार, वर्तमान संगीत-शिक्षा में विशेष स्वर-क्रमों में तैयार किए गए अभ्यासों को भी सामान्यतः वर्णालंकार अथवा अलंकार कहा जाता है। वहीं मीड, मुरकी और अन्य स्वर-सज्जा की विधियाँ राग की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति से जुड़ी होती हैं। इस प्रकार दोनों का उद्देश्य अलग होते हुए भी संगीत की गुणवत्ता को विकसित करना है। स्वर-अलंकार का मूल उद्देश्य विद्यार्थी को स्वरों के विभिन्न संभावित क्रमों से परिचित कराना है। जब विद्यार्थी एक ही स्वर-समूह को अलग-अलग ढंग से गाता है, तो वह केवल क्रम याद नहीं करता, बल्कि स्वरों के बीच की दूरी, उनकी स्थिति और उनके आपसी संबंधों को भी समझने लगता है।

3. स्वर-अलंकार के प्रमुख प्रकार

स्वर-अलंकारों की कोई एक निश्चित संख्या या सार्वभौमिक सूची नहीं है। अलग-अलग घरानों, शिक्षकों और संगीत-शिक्षण संस्थानों में इनके स्वरूप और क्रम में अंतर मिल सकता है। फिर भी, अभ्यास की प्रकृति के आधार पर इनके कुछ प्रमुख रूप समझे जा सकते हैं।

3.1. सरल आरोही-अवरोही अलंकार: यह स्वर-अभ्यास का सबसे प्रारंभिक रूप है। इसमें विद्यार्थी स्वरों को क्रमशः ऊपर और नीचे की दिशा में गाता है। उदाहरण के लिए:

Sa Re Ga Ma | Re Ga Ma Pa | Ga Ma Pa Dha | Ma Pa Dha Ni

इसी प्रकार अवरोही क्रम में स्वरों का अभ्यास किया जाता है। इस अभ्यास से विद्यार्थी को स्वर-क्रम का ज्ञान प्राप्त होता है और वह प्रत्येक स्वर को सही स्थान पर गाने का प्रयास करता है। प्रारंभिक स्तर पर इसे धीमी गति में करना अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि इससे स्वर की स्पष्टता पर ध्यान दिया जा सकता है।

3.2. चार-चार स्वरों के क्रम वाले अलंकार: इस प्रकार के अभ्यास में चार स्वरों का एक समूह बनाया जाता है और फिर उसी क्रम को अगले स्वर से आगे बढ़ाया जाता है। उदाहरण के लिए:

Sa Re Ga Ma | Re Ga Ma Pa | Ga Ma Pa Dha | Ma Pa Dha Ni

इस अभ्यास में प्रत्येक अगले समूह में एक नया स्वर जुड़ता है और पिछले समूह के कुछ स्वर आगे बढ़ जाते हैं। इससे विद्यार्थी को स्वर-समूहों को याद रखने तथा उन्हें बिना रुकावट गाने का अभ्यास मिलता है।

3.3. स्वरों की पुनरावृत्ति वाले अलंकार: इस प्रकार के अभ्यास में एक ही स्वर को दो बार या उससे अधिक बार दोहराया जाता है। उदाहरण के लिए:

Sa Sa Re Re | Ga Ga Ma Ma | Pa Pa Dha Dha | Ni Ni Sa Sa

इस अभ्यास का उद्देश्य केवल स्वर दोहराना नहीं है, बल्कि प्रत्येक स्वर को समान स्पष्टता और नियंत्रण के साथ प्रस्तुत करना है। कर्नाटक संगीत में जंटई वरिसै इसका एक परिचित उदाहरण है, जिसमें एक ही स्वर को दोहराने और दूसरी बार उस पर विशेष बल देने का अभ्यास कराया जाता है।

3.4. कूट अथवा वक्र स्वर-अलंकार: सरल आरोही-अवरोही क्रम में स्वर एक-दूसरे के बाद आते हैं, जबकि कूट या वक्र अलंकार में स्वरों का क्रम बदल दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी कभी एक स्वर छोड़कर आगे बढ़ता है और कभी किसी पहले आए स्वर पर वापस लौटता है। उदाहरण के लिए:

Sa Ga Re Ma | Ga Pa Ma Dha | Pa Ni Dha Sa

इस प्रकार के अभ्यास से विद्यार्थी को स्वरों के बीच अलग-अलग प्रकार की गति का अनुभव होता है। यह आगे चलकर रागों की विशिष्ट स्वर-चाल और आलाप के स्वर-संयोजन को समझने में सहायता कर सकता है।

3.5. **लय के अनुसार स्वर-अलंकार:** स्वर-अलंकार का अभ्यास केवल अलग-अलग स्वर-क्रमों तक सीमित नहीं है। उसे विभिन्न गतियों और लयों में भी प्रस्तुत किया जाता है। प्रारंभ में एक मात्रा पर एक स्वर गाया जा सकता है। इसके बाद उसी समय में दो स्वर और फिर चार स्वर गाने का अभ्यास किया जा सकता है। इस क्रम में विद्यार्थी को स्वरों की स्पष्टता बनाए रखते हुए गति बढ़ानी पड़ती है। यदि वह केवल तेजी से गाने का प्रयास करे और स्वर स्पष्ट न रहें, तो अभ्यास का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसलिए गति बढ़ाने से पहले स्वरों की शुद्धता और समानता पर ध्यान देना आवश्यक है।

4. **भारतीय संगीत की विभिन्न परंपराओं में स्वर-अलंकार अभ्यास:** भारतीय संगीत की प्रमुख शास्त्रीय परंपराओं में स्वर-अभ्यास को अलग-अलग नामों और पद्धतियों के माध्यम से सिखाया जाता है। हिंदुस्तानी संगीत में अलंकार और पलटे का अभ्यास प्रचलित है, जबकि कर्नाटक संगीत में प्रारंभिक अभ्यास के कई निश्चित चरण मिलते हैं। दोनों का उद्देश्य विद्यार्थी को स्वर और लय की बुनियादी समझ देना है।

4.1. **हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में अलंकार:** हिंदुस्तानी संगीत की शिक्षण-पद्धति में सामान्यतः विद्यार्थी को पहले शुद्ध और विकृत स्वरों का परिचय दिया जाता है। इसके बाद सरगम, आरोह-अवरोह और सरल अलंकारों का अभ्यास कराया जाता है। विद्यार्थी धीरे-धीरे अलग-अलग स्वर-क्रमों को गाना सीखता है और फिर उन्हें विभिन्न लयों में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यह अभ्यास आगे चलकर राग-ज्ञान से जुड़ता है। उदाहरण के लिए, राग भूपाली में गंधार, धैवत और निषाद के प्रयोग की सीमा को ध्यान में रखते हुए अलंकार तैयार किया जा सकता है। ऐसे अभ्यास से विद्यार्थी को यह समझने में सहायता मिलती है कि प्रत्येक राग के स्वर केवल एक सामान्य क्रम का हिस्सा नहीं होते, बल्कि उनके प्रयोग के अपने नियम और विशेषताएँ होती हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदुस्तानी संगीत के प्रारंभिक पाठ्यक्रम में भी विद्यार्थियों के लिए पाँच मूल अलंकारों का गायन और वादन निर्धारित किया गया है। पाठ्यक्रम में स्वर-अलंकारों को संगीत की आधारभूत दक्षता विकसित करने का हिस्सा माना गया है (University of Delhi, n.d.)। इससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा के संगीत-पाठ्यक्रमों में भी अलंकार-अभ्यास का विशेष स्थान है।

4.2. **कर्नाटक संगीत में स्वर-अभ्यास:** कर्नाटक संगीत में प्रारंभिक स्वर-अभ्यास को व्यवस्थित चरणों में सिखाया जाता है। इसमें सरली वरिसै, जंटई वरिसै और धातु वरिसै जैसे अभ्यास प्रमुख हैं। सरली वरिसै में विद्यार्थी स्वरों को सामान्य आरोही और अवरोही क्रम में गाता है। इसके बाद जंटई वरिसै में एक ही स्वर को दोहराने का अभ्यास कराया जाता है। धातु वरिसै में स्वरों के बीच छलॉग वाले क्रम रखे जाते हैं, जिससे विद्यार्थी को स्वर-स्थान और विभिन्न स्वर-संयोजनों पर नियंत्रण विकसित करने का अवसर मिलता है। इन अभ्यासों को एक से अधिक गतियों में कराया जाता है। T. N. Chitra द्वारा प्रस्तुत कर्नाटक संगीत की

शिक्षण-पद्धति के विवरण में सरली वरिसै, जंटई वरिसै और धातु वरिसै को प्रारंभिक अभ्यास के महत्वपूर्ण चरण बताया गया है। इसमें स्वर-ज्ञान के साथ श्रुति और लय की समझ विकसित करने पर भी ध्यान दिया गया है (Chitra, n.d.)। इस प्रकार हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत की पद्धतियों में नाम और अभ्यास-क्रम अलग हो सकते हैं, लेकिन दोनों में स्वर की शुद्धता, स्वर-क्रम की समझ और लय के साथ अभ्यास को आधारभूत महत्व दिया गया है।

5. स्वर-अलंकार अभ्यास का महत्व:

5.1. **स्वर-शुद्धता का विकास:** स्वर-अलंकार अभ्यास का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्वर-शुद्धता है। किसी भी राग को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए प्रत्येक स्वर का उचित स्थान पर होना आवश्यक है। नियमित अभ्यास से विद्यार्थी को यह समझने में सहायता मिलती है कि कौन-सा स्वर किस ऊँचाई पर गाया जाना चाहिए और उसका संबंध अन्य स्वरों से किस प्रकार है। जब विद्यार्थी किसी अलंकार को बार-बार गाता है, तो वह अपनी आवाज और सुने हुए स्वर के बीच अंतर पहचानने का प्रयास करता है। इससे सुनने और गाने के बीच बेहतर तालमेल विकसित करने का अवसर मिलता है।

5.2. **श्रवण-क्षमता और स्वर-ज्ञान:** संगीत सीखने में सुनने की क्षमता उतनी ही आवश्यक है जितनी गाने या बजाने की क्षमता। स्वर-अलंकार के अभ्यास में विद्यार्थी को पहले स्वर सुनना, फिर उसे पहचानना और उसके बाद उसी स्वर को दोहराना होता है। इस प्रक्रिया से उसकी श्रवण-सजगता बढ़ती है। समय के साथ विद्यार्थी स्वरों के बीच के अंतर को अधिक ध्यान से समझने लगता है। वह यह पहचानने का प्रयास करता है कि कोई स्वर अपेक्षित स्थान से ऊँचा या नीचा तो नहीं हो गया। यह क्षमता आगे चलकर रागों की पहचान और संगीत सुनने की समझ को विकसित करने में उपयोगी होती है।

5.3. **आवाज पर नियंत्रण और गायन-कौशल:** गायन में आवाज का नियंत्रण केवल ऊँचे या नीचे स्वर तक पहुँचने का नाम नहीं है। इसमें स्वर को स्थिर रखना, उसे स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना और एक स्वर से दूसरे स्वर तक सहजता से जाना भी शामिल है। अलंकारों के अभ्यास से गायक को इन सभी पहलुओं पर काम करने का अवसर मिलता है। धीमी गति में अभ्यास करने से स्वर की स्पष्टता पर ध्यान दिया जा सकता है। बाद में गति बढ़ाने से स्वरों के बीच परिवर्तन को सहज बनाए रखने का अभ्यास होता है। इस तरह स्वर-अलंकार आगे चलकर तान और अन्य तेज स्वर-रचनाओं के अभ्यास के लिए आधार तैयार कर सकते हैं।

5.4. **लयबोध और गति पर नियंत्रण:** किसी भी स्वर-क्रम को सही लय में प्रस्तुत करना आवश्यक है। अलंकार का अभ्यास करते समय विद्यार्थी को केवल यह नहीं देखना होता कि कौन-सा स्वर गाया है, बल्कि यह भी समझना होता है कि उसे किस समय पर गाया है। जब एक ही अलंकार को अलग-अलग गतियों में दोहराया

जाता है, तब विद्यार्थी को अपनी गति और स्वर-प्रस्तुति के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। इस प्रकार अलंकार-अभ्यास लयबोध को मजबूत करने में सहायक होता है। यह आगे चलकर ताल के भीतर आलाप, बोल-तान और तानों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने में उपयोगी हो सकता है।

5.5. राग-ज्ञान और रचनात्मकता की तैयारी: सामान्य स्वर-अलंकार विद्यार्थी को स्वरों के क्रम से परिचित कराते हैं, लेकिन राग-आधारित अलंकार उसे राग की प्रकृति समझने में सहायता करते हैं। प्रत्येक राग में स्वरों के प्रयोग, आरोह-अवरोह और स्वर-चाल की कुछ विशेषताएँ होती हैं। जब विद्यार्थी उन्हीं नियमों के भीतर स्वर-अलंकार बनाता और गाता है, तो उसका अभ्यास राग-ज्ञान से जुड़ने लगता है। यह प्रक्रिया आगे चलकर आलाप और तान की रचना में भी सहायक हो सकती है। विद्यार्थी पहले दिए गए स्वर-क्रम को सही ढंग से प्रस्तुत करना सीखता है और फिर धीरे-धीरे उसी आधार पर नए स्वर-संयोजन बनाने की क्षमता विकसित करता है।

5.6. वाद्ययंत्रों के अभ्यास में उपयोगिता: स्वर-अलंकार केवल गायकों के लिए उपयोगी नहीं हैं। सितार, बाँसुरी, वायलिन, हारमोनियम और अन्य वाद्ययंत्रों के विद्यार्थी भी इनका नियमित अभ्यास करते हैं। वाद्ययंत्र पर स्वरों के क्रम को बजाने से उँगलियों की गति, स्वर-स्थान की पहचान और ध्वनि की स्पष्टता पर काम करने का अवसर मिलता है। उदाहरण के लिए, सितार या वायलिन पर एक ही अलंकार को अलग-अलग स्वर-स्थानों से बजाने के लिए उँगलियों की स्थिति और गति पर नियंत्रण आवश्यक होता है। बाँसुरी में इसी प्रकार का अभ्यास श्वास और स्वर के संतुलन से जुड़ जाता है। इसलिए अलंकार-अभ्यास विभिन्न वाद्यों की तकनीकी आवश्यकताओं के अनुसार भी उपयोगी सिद्ध होता है।

6. स्वर-अलंकार अभ्यास की उचित विधि

स्वर-अलंकार का लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब उसका अभ्यास सही पद्धति से किया जाए। केवल अधिक समय तक गाते रहना पर्याप्त नहीं है। विद्यार्थी को अपनी क्षमता के अनुसार अभ्यास का क्रम बनाना चाहिए और प्रत्येक चरण में स्वरों की गुणवत्ता पर ध्यान देना चाहिए। सबसे पहले अपने अनुकूल स्वर-स्थान का निर्धारण करके तानपुरे या किसी विश्वसनीय श्रुति-साधन के साथ षड्ज का अभ्यास करना चाहिए। इसके बाद सरल आरोही-अवरोही क्रम को धीमी गति में गाना चाहिए। जब विद्यार्थी प्रत्येक स्वर को स्पष्ट और स्थिर रूप से प्रस्तुत करने लगे, तब चार-चार स्वरों वाले अलंकार तथा पुनरावृत्ति वाले स्वर-क्रमों की ओर बढ़ा जा सकता है। इसके बाद अभ्यास को मध्यम और द्रुत गति में किया जा सकता है। प्रत्येक गति में स्वर की स्पष्टता बनी रहनी चाहिए।

यदि तेज गति में स्वर अस्पष्ट होने लगें, तो पुनः धीमी गति पर लौटना अधिक उचित है। इसी प्रकार विद्यार्थी को सामान्य स्वर-क्रमों के साथ-साथ अपने सीखे हुए रागों के नियमों के अनुसार बनाए गए अलंकारों का भी अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के दौरान अपनी गलतियों को पहचानना भी आवश्यक है। कभी-कभी विद्यार्थी एक ही स्वर को बार-बार गलत स्थान पर गाता है, लेकिन उसे स्वयं इसका पता नहीं चलता। ऐसे में शिक्षक का मार्गदर्शन और अपनी प्रस्तुति को ध्यान से सुनना उपयोगी हो सकता है। अभ्यास की नियमितता को गति या मात्रा से अधिक महत्व देना चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर-अलंकार अभ्यास का स्थान आधारभूत और महत्वपूर्ण है। यह विद्यार्थी को स्वरों के क्रम, उनके आपसी संबंध और लय के साथ उनके प्रयोग को समझने का अवसर देता है। सरल आरोही-अवरोही क्रम से शुरू होकर विविध स्वर-संयोजन और राग-आधारित अभ्यास तक इसकी उपयोगिता संगीत-शिक्षा के अनेक स्तरों पर दिखाई देती है। हिंदुस्तानी संगीत के अलंकार और पलटे तथा कर्नाटक संगीत की सरली वरिसै, जंटई वरिसै और धातु वरिसै जैसी पद्धतियाँ इस बात का उदाहरण हैं कि भारतीय संगीत परंपरा में स्वर-अभ्यास को व्यवस्थित रूप से विकसित किया गया है।

इन अभ्यासों के माध्यम से विद्यार्थी स्वर-शुद्धता, श्रवण-क्षमता, लयबोध और गायन अथवा वादन पर नियंत्रण विकसित कर सकता है। हालाँकि, अलंकारों को केवल यांत्रिक रूप से दोहराना पर्याप्त नहीं है। उनका वास्तविक महत्व तभी सामने आता है जब विद्यार्थी प्रत्येक स्वर को समझकर, सही श्रुति और लय में तथा संगीत की प्रकृति के अनुरूप प्रस्तुत करता है। राग के नियमों को ध्यान में रखकर किया गया अभ्यास विद्यार्थी को तकनीकी दक्षता के साथ संगीतात्मक समझ भी प्रदान करता है। अंततः कहा जा सकता है कि स्वर-अलंकार किसी भी संगीत विद्यार्थी के लिए केवल प्रारंभिक पाठ नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाली साधना का हिस्सा हैं। नियमित, सजग और सही पद्धति से किया गया यह अभ्यास ही आगे चलकर संगीत की अधिक जटिल विधाओं को सीखने और उनमें अपनी अभिव्यक्ति विकसित करने का मजबूत आधार बनता है।

संदर्भ ग्रंथ

- Śārṅgadeva. (1978). Saṅgīta-Ratnākara, Vol. I: Treatment of Svara. English translation by Dr. R. K. Shringy under the supervision of Dr. Premlata Sharma. Motilal Banarsidass, Delhi, Varanasi and Patna.
- Pudaruth, S. K. (2016). A Reflection on the Aesthetics of Indian Music, With Special Reference to Hindustani Raga-Sangita. SAGE Open, 6(4). <https://doi.org/10.1177/2158244016674512>

University of Delhi. (n.d.). Hindustani Music (Vocal and Instrumental): Generic Elective GE-1,

Practical Course Syllabus. Department of Academic Affairs, University of Delhi.

Chitra, T. N. (n.d.). Learning Carnatic Music: Stages in Abhyasaganam. Indian Heritage.

